'1935 का अधिनियम'

1919 का अधिनियम भारतीयों की आकांक्षाओं को पूरा करने में असफल रहा था। इसके द्वारा प्रान्तों में की गयी द्वैध शासन व्यवस्था भी विफल हो गयी थी। उल्लेखनीय है कि साइमन आयोग ने भी इसे विफल घोषित किया था। स्वाभाविक तौर पर भारत में धीरे धीरे डोमिनियन स्टेटस की मांग उत्तरोत्तर जोर पकड़ती गयी।

भावी संवैधानिक सुधारों के सम्बन्ध में अनुशंसा करने के लिये ब्रिटिश शासन द्वारा साइमन आयोग का गठन किया गया किंतु लगभग सभी राजनीतिक दलों ने इसका विरोध किया। इसी दौरान कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज की मांग को लेकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया। तभी संवैधानिक सुधारों पर विचार करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज सम्मेलन लंदन में आहूत किया।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर 1930 को लंदन में आरंभ हुआ किंतु कांग्रेस ने इसमें हिस्सा नहीं लिया। दूसरा गोलमेज सम्मेलन 7 Sep 1931 को आरंभ हुआ जिसमें कांग्रेस ने भी हिस्सा लिया किंतु साम्प्रदायिक समस्या की अलंघ्य बाधा के कारण इस सम्मेलन में भावी संवैधानिक सुधारों के बारे में कोई आम सहमति नहीं बन पायी। तीसरा सम्मेलन 17 नव. 1932 में हुआ वह भी नाकामयाब रहा जिसमें कांग्रेस ने हिस्सा नहीं लिया था। ऐसे ही वातावरण में 16 अगस्त 1932 को रैम्से मैकडोनाल्ड के द्वारा साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा की गयी। प्रधानमंत्री द्वारा भावी व्यवस्था में विभिन्न संप्रदायों एवं दलितों को प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में सुझाव दिया गया। कांग्रेस ने इसका पुरजोर विरोध किया।

ऐसे ही वातावरण में मार्च 1933 को ब्रिटिश सरकार द्वारा श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया। जिसमें भावी संवैधानिक सुधारों का

प्रस्ताव किया गया। इस पर विचार के लिये दोनों सदनों की एक संयुक्त प्रवर समिति गठित की गई। नवम्बर 1934 में इस समिति के रिपोर्ट के आधार पर संसद में विधेयक लाया गया। अगस्त 1935 में संसद द्वारा पारित होकर यह विधेयक भारत सरकार अधिनियम बना। बिल में 14 खंड, 10 अनुसूची एवं 451 धारायें थी। इस अधिनियम में निम्न प्रावधान थे -

(क) इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासतों को मिला-(1) कर एक संघीय व्यवस्था स्थापित करने का प्रावधान किया गया किंतु इसके लिये शर्त यह थी कि यह तभी संभव होगा जब कुल रियासतों में से आधे रियासत या रियासतों की कुल आबादी की आधी से अधिक आबादी का प्रतिनिधित्व करते हो संघ में शामिल होने के लिये राजी हो। यह भी प्रावधान था कि रियासतों के प्रतिनिधि शासकों द्वारा मनोनीत किये जायेंगे।

(2) इस अधिनियम द्वारा भारत सचिव के परिषद को समाप्त कर दिया गया। वैसे उसे तीन से 6 : सलाहकार रखने का अधिकार दिया गया।

(3) भारत के वित्तीय मामलों में भारत सचिव का नियंत्रण समाप्त कर दिया गया अर्थात् वित्तीय मामलों में भारत को स्वायत्तता प्राप्त हुयी।

(4) केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई। प्रतिरक्षा, विदेश, जनजातियों के मामले, धार्मिक मामले आदि को वायसराय के पूर्ण नियंत्रण में रखा गया।

(5) केन्द्र में दो सदनीय विधायिका की व्यवस्था की गई। काउंसिल ऑफ स्टेट एवं संघीय विधायिका।

(6) समस्त प्रशासकीय विषयों को तीन सूचियों में बाँटा गया - केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची एवं समवर्ती सूची। समवर्ती सूची के विषयों पर विधान बनाने का अंतिम अधिकार केन्द्र को दिया गया।

(7) इस अधिनियम के तहत एक संघीय-न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था की गई।

(8) इसी अधिनियम द्वारा बर्मा को भारत से अलग किया गया। सिंध और उड़िसा दो नये प्रांतों का निर्माण हुआ। उत्तर पश्चिमी सीमा क्षेत्र को प्रांत का दर्जा दिया गया। इसतरह ब्रिटिश भारत में कुल 11 प्रांत हो गये।

(9) इस अधिनियम की सबसे खास बात थी प्रान्तीय स्वायत्तता। इस अधिनियम द्वारा यह उपबंध किया गया कि प्रांतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जायेगी अर्थात् प्रांतीय प्रशासन जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों से निर्मित मंत्रिमंडल के हाथ में होगी। मंत्रिमंडल विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगी।

(10) मतदाताओं की संख्या बढ़ायी गई तथा लगभग 10% आबादी को मतदान का अधिकार दिया गया। किंतु अभी भी सम्पत्ति ही मताधिकार का आधार रहा तथा पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था भी कायम रखी गयी।

(11) कुछ प्रान्तों में द्विसदनीय विधायिका जबकि कुछ में एक सदनीय विधायिका स्थापित की गई।

(12) गवर्नर को 6 से 8 सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार दिया गया, साथ ही उसे कुछ विशिष्ट अधिकार दिये गये जैसे, अध्यादेश जारी करने का अधिकार, वीटो का अधिकार, मंत्रिमंडल को भंग कर शासन को अपने हाथ में लेने का अधिकार। इतना ही नहीं अल्पसंख्यकों, जनजातियों, सिविल सेवकों आदि के हितों की रक्षा के लिये गवर्नर को विशेष अधिकार दिये गये।

यहाँ तक अधिनियम के संघीय प्रावधान का सवाल है उसे लागू नहीं किया जा सका। यहाँ भारत के दो प्रमुख राजनीतिक दल कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग का इस सम्बंध में उदासीन थे वहीं स्वयं रियासतों में भी रुचि नहीं ली। मुस्लिम लीग इसलिये

संघीय व्यवस्था के पक्ष में नहीं था क्योंकि इसे लगता था कि प्रस्तावित संघ का स्वरूप एकात्मक होगा और इसलिये उसपर हिन्दुओं का प्रभुत्व होगा। चूँकि केन्द्रीय विधायिका के प्रतिनिधि प्रांतों से चुनकर आयेंगे इसलिए उसमें कांग्रेस की बहुमत होगी। कांग्रेस ने इसका समर्थन इसलिए नहीं किया क्योंकि लगभग एक तिहाई केन्द्रीय सत्ता की सीटें रियासतों को दी गयी थी, साथ ही शासकों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि भेजे जाने की बात कही गयी थी। स्वाभाविक तौर पर मनोनीत प्रतिनिधि, प्रतिक्रियावादी तथा हुकूमत के पिट्ठू होते जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास की प्रक्रिया में बाधक साबित होते।

किंतु संघीय व्यवस्था के असफल हो जाने का सबसे प्रबल कारण स्वयं रियासतें थी। आरंभ में रियासतों के शासक संघ को लेकर काफी उत्साहित थे किंतु अब वे कई कारणों से इसके पक्ष में नहीं थे। इनकी पहली चिंता सर्वोच्च सत्ता को लेकर थी। उन्हें डर था कि इस नयी व्यवस्था के अन्तर्गत सर्वोच्च सत्ता ब्रिटिश गवर्नर में निहित हो जायेगी। उन्हें यह भी चिन्ता थी कि इस व्यवस्था में शामिल हो जाने से रियासतों का सम्पर्क ब्रिटिश भारत के लोकतांत्रिक तत्वों से होगा जो उनके अस्तित्व के लिये खतरनाक होगा। इसी तरह बड़े रियासतों को अपनी विशेष स्वायत्तता खोने का डर था। छोटे रियासतों की यह शिकायत थी कि उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है।

इस अधिनियम के प्रांतीय व्यवस्था की लगभग सभी दलों ने आलोचना की। कांग्रेस ने इसे नकारते हुये वयस्क मताधिकार पर आधारित संविधान सभा के गठन की मांग की। प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि कांग्रेस ने इस अधिनियम को नकार दिया तथा 1937 में होने वाले आम चुनावों में भाग लिया तथा कई प्रांतों में अपना मंत्रिमंडल बनाने में भी कामयाब हुआ।

जहाँ तक 1935 के अधिनियम का

भारत में संवैधानिक विकास अथवा उत्तरदायी सरकार की स्थापना की दिशा में योगदान का प्रश्न है इस सम्बन्ध में विद्वानों की भिन्न राय है। कुछ विद्वानों की राय में यह अधिनियम भारत में संवैधानिक विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। कृपलैंड का मानना था कि यह अधिनियम रचनात्मक राजनीतिक विचारों की एक महान सफलता थी जिसने भारत के साम्य का अंग्रेजों के हाथों से भारतीयों के हाथों में स्थानांतरण को संभव बना दिया। इसी तरह इंग्लैंड के कंजरवेटिव पार्टी का मानना था कि इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों को वे अधिकार एवं दायित्व दे दिये गये जिनके लायक वे नहीं थे।

लेकिन भारतीय दृष्टिकोण से यह अधिनियम वास्तव में एक धोखा या छलावा मात्र था जिसने भारतीय हाथों में कोई वास्तविक शक्ति नहीं सौंपा। इसमें स्वराज तो दूर डोमिनियन स्टेट्स भी नहीं दिया गया था। कई निष्पक्ष टीकाकारों ने इस अधिनियम की आलोचना की। यहाँ तक कि इंग्लैंड के श्रमिक दल का भी यह मानना था कि यह अधिनियम भारतीय समस्या का कोई समाधान नहीं प्रस्तुत करता बल्कि भारत के प्रतिक्रियावादी एवं राजभक्त तत्वों के साथ गठजोड़ कर ब्रितानी हितों की रक्षा करने का प्रयत्न है। इस संदर्भ में यह भी कहा गया है कि अधिनियम भारत को एक लिखित संविधान देने की बात करता है किंतु विडम्बना यह है कि इसमें भारतीय जनता अथवा जन-प्रतिनिधियों की कोई भूमिका नहीं है। नेहरू ने तो इसे दासता का अनापत्र कहा। कई लोगों की राय में तो यह का जनाधार नष्ट करने का एक चतुर प्रयास था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस अधिनियम में बहुत सारी कमियाँ थी किन्तु इन सबके बावजूद कुछ मामलों में यह एक बढ़ा हुआ कदम था। ध्यातव्य है कि कई शताब्दियों बाद भारतीयों को सत्ता में सचमुच भागीदारी मिली। इस अधिनियम द्वारा भारतीय

जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों से एक ऐसे मंत्रिमंडल की स्थापना की गयी जो विधान सभा के प्रति उत्तरदायी थी। पहली बार भारतीयों के लिए मुख्यमंत्री एवं मंत्री जैसे शब्दों का प्रयोग अपने आप में काफी सुखद एवं महत्वपूर्ण था। पर ही उल्लेखनीय है कि यद्यपि कुछ एक अवसरों पर गवर्नर एवं मुख्यमंत्री के बीच टकराव होते थे किंतु सामान्यतः प्रशासन में मुख्यमंत्री को प्राथमिकता प्राप्त थी। व्यवहारिक स्तर पर प्रायः यह देखा गया कि गवर्नरों ने मंत्रियों के अधिकारों एवं दायित्वों का सम्मान किया और दैनंदिन के प्रशासन में अधिक हस्तक्षेप नहीं किया।

किंतु केन्द्रीय सरकार अभी भी पूरीतरह गैर-जिम्मेदार एवं निरंकुश बनी रही। देखा जाये तो इस अधिनियम के माध्यम से हुकूमत ने फूट डालो एवं राज करो की अपनी नीति को और सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया। इसने संविधानवादी विचारधारा एवं राजनीति को फिर से प्रोत्साहित किया, कांग्रेस को प्रान्तीय मामलों में उलझाकर रखने की कोशिश की, कांग्रेस हाईकमान (केन्द्रीय नेतृत्व) को कमजोर करने एवं प्रान्तीय क्षत्रपों को उभारने की चाल चली, वामपंथ एवं दक्षिण पंथ में फूट डालने की कोशिश की गयी आदि। इतना ही नहीं कांग्रेस की लोकप्रियता एवं जनाधार को तोड़ने की सूक्ष्म चाल चली।

इस तरह देखा जाये तो कुछ अच्छी बातों के बावजूद 1935 का अधिनियम मुख्य रूप से भारत में ब्रितानी हितों की रक्षा के उद्देश्य से ही लाया गया था न कि भारतीय शासन सूत्र भारतीयों के हाथों में सौंपने के लिये।